।। ओ३म् ।।

आर्य सत्संग गुटका

सन्ध्या, प्रार्थना, स्वस्तिवाचन, शान्तिकरण, प्रधान हवन, संगठनसूक्त, आर्यसमाज के नियम एवं मनोहारी भजन

(सार्वदेशिक धर्मार्य सभा से स्वीकृत पद्धति के आधार पर)

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो

ओ३म्

देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।।

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द

4408, नई सड़क, दिल्ली–110006 दूरभाष : 23977216

स्थापित 1925 वैदिक–ज्ञान–प्रकाश का गरिमापूर्ण 90वाँ वर्ष(1925–2015)

संस्करण : 2015 मूल्य : 10.00 रुपये

प्रार्थना

हे सर्वाधार, सर्वान्तर्यामिन् परमेश्वर ! आप अनन्तकाल से अपने उपकारों की वर्षा किये जाते हो। प्राणिमात्र की सम्पूर्ण कामनाओं को आप ही प्रतिक्षण पूर्ण करते हो। हमारे लिए जो कुछ शुभ और हितकर है उसे आप बिना माँगे स्वयं हमारी झोली में डालते जाते हो, आपके आँचल में अविचल शान्ति तथा आनन्द का वास है। आपकी चरण–शरण की शीतल छाया में परम तृप्ति है, शाश्वत सुख की उपलब्धि है तथा सब अभिलषित पदार्थों की प्राप्ति है।

हे जगत्पिता परमेश्वर ! हममें सच्ची श्रद्धा तथा विश्वास हो। हम आपकी अमृतमयी गोद में बैठने के अधिकारी बनें। अन्तःकरण को मलिन बनानेवाली स्वार्थ तथा संकीर्णता की सब क्षुद्र भावनाओं से हम ऊँचे उठें। काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, द्वेष इत्यादि कुटिल भावनाओं तथा सब मलिन वासनाओं को हम दूर करें। अपने हृदय की आसुरी प्रवृत्तियों के साथ युद्ध में विजय पाने के लिए हे प्रभो ! हम आपको ही पुकारते हैं और आपका ही आँचल पकड़ते हैं।

हे परम पावन प्रभो ! हममें सात्त्विक प्रवृत्तियाँ जाग्रत हों। क्षमा, सरलता, स्थिरता, निर्भयता, अहंकार–शून्यता इत्यादि शुभ भावनाएँ हमारी सम्पत्ति हों। हमारा शरीर स्वस्थ तथा परिपुष्ट हो, मन सूक्ष्म तथा उन्नत हो, आत्मा पवित्र तथा सुन्दर हो, आपके संस्पर्श से हमारी सारी शक्तियाँ विकसित हों। हृदय दया तथा सहानुभूति से भरा हो। हमारी वाणी में मिठास हो तथा दृष्टि में प्यार हो। विद्या और ज्ञान से हम परिपूर्ण हों। हमारा व्यक्तित्व महान् तथा विशाल हो।

हे प्रभो ! अपने आशीर्वादों की वर्षा करो। दीनातिदीनों के मध्य में विचरने वाले आपके चरणारविन्दों में हमारा जीवन अर्पित हो। इसे अपनी सेवा में लेकर हमें कृतार्थ करें।

ओ३म् शान्तिः ! शान्तिः !! शान्तिः !!!

प्रातःकाल की प्रार्थना के मन्त्र

विधि—सदा स्त्री-पुरुष दश बजे शयन और रात्रि के पिछले प्रहर वा चार बजे उठके प्रथम हृदय में परमेश्वर का चिन्तन करके धर्म और अर्थ के अनुष्ठान वा उद्योग करने में यदि कभी पीड़ा भी हो तथापि धर्मयुक्त पुरुषार्थ को कभी न छोड़ें, किन्तु सदा शरीर और आत्मा की रक्षा के लिए युक्त आहार विहार, औषध-सेवन, सुपथ्य आदि से निरन्तर उद्योग करके व्यावहारिक और पारमार्थिक कर्त्तव्य कर्म की सिद्धि के लिए ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना भी किया करें कि जिस परमेश्वर की कृपादृष्टि और सहाय से महाकठिन कार्य भी सुगमता से सिद्ध हो सके। इसके लिए निम्नलिखित मन्त्र हैं—

प्रातर॒ग्निं प्रा॒तरिन्द्रं॑ हवामहे प्रा॒तर्मि॒त्रावरु॑णा प्रा॒तर॒श्विना॑।
प्रा॒तर्भगं॑ पू॒षणं॒ ब्रह्म॑ण॒स्पतिं॑ प्रा॒तः सोम॑मु॒त रु॒द्रं हु॑वेम॥

—ऋग्वेद ७।४१।१

अर्थ—प्रभात बेला में स्वप्रकाशस्वरूप परमैश्वर्य के दाता और परमैश्वर्ययुक्त प्राण उदान के समान प्रिय और सर्वशक्तिमान् सूर्य चन्द्र को जिसने उत्पन्न किया है उस परमात्मा की हम स्तुति करते हैं और भजनीय सेवनीय ऐश्वर्ययुक्त पुष्टिकर्त्ता अपने उपासक, वेद और ब्रह्माण्ड के पालन करनेहारे अन्तर्यामी प्रेरक और पापियों को रुलाने और सर्वरोगनाशक जगदीश्वर की हम स्तुति प्रार्थना करते हैं।

प्रा॒त॒र्जितं॒ भग॑मु॒ग्रं हु॑वेम व॒यं पु॒त्रमदि॑ते॒र्यो वि॑ध॒र्ता।
आ॒ध्र॒श्चि॒द्यं मन्य॑मानस्तु॒रश्चि॒द् राजा॑ चि॒द्यं भगं॑ भ॒क्षीत्याह॑॥

—ऋग्वेद ७।४१।२

अर्थ—पाँच घड़ी रात्रि रहे जयशील ऐश्वर्य के दाता तेजस्वी अन्तरिक्ष के सूर्य की उत्पत्ति करने और जो कि सूर्यादि लोकों को विशेष करके धारण करनेहारा सब ओर से धारणकर्त्ता जिस किसी का भी जाननेहारा दुष्टों का भी दण्डदाता और सबका प्रकाशक है, दण्डदाता जिस भगम् भजनीय स्वरूप को भी इस प्रकार सेवन करता है और इसी प्रकार भगवान् परमेश्वर सबको उपदेश करता है कि तुम, जो मैं सूर्यादि जगत् का बनाने और धारण करनेहारा हूँ, उस मेरी उपासना को किया करो और मेरी आज्ञा में चला करो, जिससे तुम लोग सदा उन्नतिशील रहो, इससे हम लोग उसकी स्तुति करते हैं।

भग॒ प्रणे॑त॒र्भग॒ सत्य॑राधो॒ भगे॒मां धिय॒मुद॑वा॒ दद॑न्नः।
भग॒ प्र णो॑ जनय॒ गोभि॒रश्वै॒र्भग॒ प्र नृभि॑र्नृ॒वन्तः॑ स्याम॥

—ऋग्वेद ७।४१।३

अर्थ—हे भजनीयस्वरूप सबके उत्पादक सत्याचार में प्रेरक ऐश्वर्यप्रद सत्यधन को देनेहारे सत्याचरण करनेहारों को ऐश्वर्यदाता आप परमेश्वर! हमको इस प्रज्ञा को दीजिये, और उसके दान से हमारी रक्षा कीजिये, आप गाय आदि और घोड़े आदि उत्तम पशुओं के योग से राज्यश्री को हमारे लिए प्रकट कीजिये। हे आपकी कृपा से हम लोग उत्तम मनुष्यों से बहुत वीर मनुष्यवाले अच्छे प्रकार होवें।

उ॒तेदानीं॒ भग॑वन्तः स्यामो॒त प्र॑पि॒त्व उ॒त मध्ये॒ अह्ना॑म्।
उ॒तोदि॑ता मघव॒न्त्सूर्य॑स्य व॒यं दे॒वानां॑ सुम॒तौ स्या॑म॥

—ऋग्वेद ७।४१।४

अर्थ—हे भगवन्! आपकी कृपा और अपने पुरुषार्थ से हम लोग इस समय प्रकर्षता, उत्तमता की प्राप्ति में और इन दिनों के मध्य में ऐश्वर्ययुक्त शक्तिमान् होवें, और हे परमपूजित असंख्यधन देनेहारे! सूर्यलोक के उदय में पूर्ण विद्वान् धार्मिक आप लोगों की अच्छी उत्तम प्रज्ञा और सुमति में हम लोग सदा प्रवृत्त रहें।

भग॑ ए॒व भग॑वाँ अस्तु देवा॒स्तेन॑ व॒यं भग॑वन्तः स्याम।
तं त्वा॑ भग॒ सर्व॒ इज्जो॑हवीति॒ स नो॑ भग पुरए॒ता भ॑वे॒ह॥

—ऋग्वेद ७।४१।५

अर्थ—हे सकलैश्वर्यसम्पन्न जगदीश्वर! जिससे उस आपकी सब सज्जन निश्चय करके प्रशंसा करते हैं, सो आप हे ऐश्वर्यप्रद! इस संसार और हमारे गृहाश्रम में अग्रगामी और आगे-आगे सत्य कर्मों में बढ़ानेहारे हूजिए, जिससे सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त और समस्त ऐश्वर्य के दाता होने से आप ही हमारे पूजनीय देव हूजिए, उसी हेतु से हम विद्वान् लोग सकलैश्वर्य-सम्पन्न होके सब संसार के उपकार में, तन, मन, धन से प्रवृत्त होवें।

(१) ब्रह्मयज्ञ : वैदिक सन्ध्या

पहले जलादि से बाह्य शुद्धि, फिर राग–द्वेषादि के त्याग से भीतर की शुद्धि करनी चाहिए। तत्पश्चात् कुशा या हाथ से मार्जन करें। फिर कम–से–कम तीन प्राणायाम करें। पश्चात् 'गायत्री मन्त्र' से शिखा को बाँधकर रक्षा करें।

ओम्। भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

अथाचमनमन्त्रः

ओं शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये।
शंयोरभिस्रवन्तु नः॥ —यजुः० ३६।१२

सर्वव्यापक, सबका प्रकाशक और सबको आनन्द देनेवाला परमेश्वर मनोवाञ्छित सुख और पूर्णानन्द की प्राप्ति के लिए हमारा कल्याण करे तथा हमपर सुख की सर्वदा वृष्टि करे।

अथेन्द्रियस्पर्शमन्त्राः

पात्र में से बाएँ हाथ में जल लेकर दाहिने हाथ की मध्यमा और अनामिका अङ्गुलियों से स्पर्श करके प्रथम दक्षिण और पश्चात् वामपार्श्व में निम्न मन्त्रों से स्पर्श करें।

ओं वाक् वाक्। ओं प्राणः प्राणः। ओं चक्षुश्चक्षुः। ओं श्रोत्रं श्रोत्रम्। ओं नाभिः। ओं हृदयम्। ओं कण्ठः। ओं शिरः। ओं बाहुभ्यां यशोबलम्। ओं करतलकरपृष्ठे।

इन मन्त्रों से ईश्वर की प्रार्थनापूर्वक क्रमशः मुख, नासिका, नेत्र, श्रोत्र (कान), नाभि, हृदय, कण्ठ, सिर तथा भुजाओं के मूल स्कन्ध और दोनों हाथों के ऊपर-तले स्पर्श करें। इसका अभिप्राय यह है कि ईश्वर की कृपा से हमारी ये सब ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ यश और बल से युक्त हों।

अथेश्वरप्रार्थनापूर्वकमार्जनमन्त्राः

अब बाएँ हाथ में जल लेकर मध्यमा और अनामिका अङ्गुली के अग्रभाग से नेत्रादि अङ्गों पर जल छिड़कें। जो आलस्य न हो और जल प्राप्त न हो तो न छिड़कें।

ओं भूः पुनातु शिरसि। ओं भुवः पुनातु नेत्रयोः। ओं स्वः पुनातु कण्ठे। ओं महः पुनातु हृदये। ओं जनः पुनातु नाभ्याम्। ओं तपः पुनातु पादयोः। ओं सत्यं पुनातु पुनश्शिरसि। ओं खम्ब्रह्म पुनातु सर्वत्र।

प्राणों से भी प्रिय परमात्मा सिर में पवित्रता करे। दुःख-विनाशक परमात्मा आँखों में पवित्रता करे। सदा आनन्दमय और सबको आनन्द देनेवाला परमात्मा कण्ठ में पवित्रता करे। सबसे महान् और सबका पूज्य परमात्मा हृदय में पवित्रता करे। सर्वजगत् उत्पादक परमात्मा नाभि में पवित्रता करे। दुष्टों को सन्ताप देनेवाला परमात्मा पैरों में पवित्रता करे, सत्यस्वरूप अविनाशी परमात्मा पुनः सिर में पवित्रता करे। सर्वव्यापक, सर्वतोमहान् परमात्मा शरीर के सब अङ्गों में पवित्रता करे।

प्राणायाममन्त्राः

पुनः शास्त्रोक्त रीति से प्राणायाम[१] की क्रिया करता जावे और नीचे लिखे मन्त्रों का जप भी करता जावे। इस रीति से

---

१. प्राणायाम के लिए सत्यार्थप्रकाश का तृतीय समुल्लास देखिए।

कम–से–कम तीन और अधिक–से–अधिक २१ प्राणायाम करे।

ओं भूः। ओं भुवः। ओं स्वः। ओं महः। ओं जनः। ओं तपः। ओं सत्यम्॥ —तैत्ति० प्र० १०।२७

हे परमपिता परमात्मन्! आप प्राणों से प्रिय, दुःख-विनाशक और सुखप्रदाता, आनन्दमय और आनन्ददाता, सर्वतो-महान् सकल जगत् के उत्पत्तिकर्त्ता, दुष्टों को दण्ड देनेवाले, सदा एकरस, अखण्ड, अविनाशी और अपरिवर्तनशील हो।

इस प्रकार ईश्वर के गुणों का स्मरण करते हुए उसमें अपने-आपको मग्न करके अत्यन्त आनन्दित होना चाहिए।

अथाघमर्षणमन्त्राः

तत्पश्चात् सृष्टिकर्त्ता परमेश्वर और सृष्टिक्रम का विचार नीचे लिखे मन्त्रों से करें और जगदीश्वर को सर्वव्यापक, न्यायकारी, सर्वत्र, सर्वदा सब जीवों के कर्मों के द्रष्टा को निश्चित मानके पाप की ओर अपने आत्मा और मन को कभी न जाने दें, किन्तु सदा धर्मयुक्त कर्मों का वर्त्तमान रक्खें।

—संस्कारविधि

ओम् ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽअर्णवः॥ १॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरोऽअजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी॥ २॥
सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्।
दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥ ३॥

—ऋ० १०।१९०।१-३

सर्वत्र प्रकाशमान ईश्वर के अनन्त सामर्थ्य से वेदविद्या और त्रिगुणात्मक प्रकृति उत्पन्न हुई। उसी परमात्मा के सामर्थ्य से प्रलय उत्पन्न हुआ और उसी परमात्मा से महासमुद्र उत्पन्न हुए॥ १ ॥

सारे ब्रह्माण्ड को सहज ही में अपने वश में रखनेवाले परमेश्वर ने समुद्र की उत्पत्ति के पश्चात् संवत्सर=वर्ष और फिर इनके विभाग, दिन, रात, क्षण, मुहूर्त्त आदि को रचा॥ २ ॥

सब जगत् को धारण और पोषण करनेवाले परमात्मा ने जैसे पूर्व कल्प में सूर्य और चन्द्र रचे वैसे ही इस कल्प में भी रचे हैं। ठीक उसी प्रकार द्युलोक, पृथिवीलोक, अन्तरिक्ष और आकाश में जितने लोक हैं उनका निर्माण भी पूर्वकल्प के अनुसार ही किया है॥ ३ ॥

अथाचमनमन्त्रः

ओं शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये।
शँयोरभिस्रवन्तु नः॥ —यजुः० ३६।१२

इस मन्त्र से पुनः तीन आचमन करें। तदनन्तर गायत्र्यादि मन्त्रों के अर्थविचारपूर्वक परमेश्वर की स्तुति अर्थात् परमेश्वर के गुणों, और उपकारों का ध्यान कर पश्चात् प्रार्थना करें।

अथ मनसापरिक्रमा-मन्त्राः

निम्न मन्त्रों को पढ़ते जाना और अपने मन से चारों ओर बाहर-भीतर परमात्मा को पूर्ण जानकर निर्भय, निश्शङ्क, उत्साही. आनन्दित तथा पुरुषार्थी रहना—

ओम्। प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षितादित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ १॥

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ २॥

प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकू रक्षितान्न-मिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ ३॥

उदीची दिक् सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिता-शनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ ४॥

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽ३स्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ ५॥

ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योऽस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ ६ ॥ —अथर्व० ३।२७।१-६

पूर्वदिशा या सामने की ओर ज्ञानस्वरूप परमात्मा सब जगत् का स्वामी है। वह बन्धन-रहित भगवान् सब ओर से रक्षा करता है। सूर्य की किरणें उसके बाण अर्थात् रक्षा के साधन हैं। उन सबके गुणों के अधिपति ईश्वर के गुणों को हम लोग बारम्बार नमस्कार करते हैं। जो ईश्वर के गुण और ईश्वर के रचे पदार्थ जगत् की रक्षा करनेवाले हैं और पापियों को बाणों के समान पीड़ा देनेवाले हैं उनको हमारा नमस्कार हो। जो अज्ञान से हमारा द्वेष करता है और जिससे हम द्वेष करते हैं उन सबकी बुराई को उन बाण-रूपी मुख के बीच में दग्ध कर देते हैं॥ १ ॥

दक्षिण दिशा में सम्पूर्ण ऐश्वर्ययुक्त परमात्मा सब जगत् का स्वामी है। कीट-पतंग, वृश्चिक आदि से वह परमेश्वर रक्षा करनेवाला है। ज्ञानी लोग उसकी सृष्टि में बाण के सदृश हैं। उन सबके....इत्यादि पूर्ववत्॥ २ ॥

पश्चिम दिशा में वरुण सबसे उत्तम परमेश्वर सबका राजा है। वह बड़े-बड़े अजगर, सर्पादि विषधर प्राणियों से रक्षा करने-वाला है। पृथिव्यादि पदार्थ उसके बाण के सदृश हैं अर्थात् श्रेष्ठों की रक्षा और दुष्टों की ताड़ना के निमित्त हैं। उन सबके....इत्यादि पूर्ववत्॥ ३ ॥

उत्तर दिशा में सोम—शान्त्यादि गुणों से आनन्द प्रदान करनेवाला जगदीश्वर सब जगत् का राजा है। वह अजन्मा और अच्छी प्रकार रक्षा करनेवाला है। विद्युत् उसके बाण हैं। उन सबके....इत्यादि पूर्ववत्॥ ४ ॥

नीचे की दिशा में विष्णु—सर्वत्र व्यापक परमात्मा सब जगत् का राजा है। चित्रग्रीवा[1] वाला परमेश्वर सब प्रकार से रक्षा करता है। नाना प्रकार की वनस्पतियाँ उसके बाण के सदृश हैं। उन सबके....इत्यादि पूर्ववत्॥ ५॥

ऊपर की दिशा में बृहस्पति, वाणी, वेदशास्त्र और आकाश आदि बड़ी-बड़ी शक्तियों का स्वामी सबका अधिष्ठाता है। अपने शुद्ध ज्ञानमय स्वरूप से हमारा रक्षक है। वृष्टि उसके बाण-रूप अर्थात् रक्षा के साधन हैं। उन सबके....इत्यादि पूर्ववत्॥ ६॥

अथोपस्थानमन्त्राः

अब परमात्मा का उपस्थान अर्थात् परमेश्वर के निकट मैं और मेरे निकट परमात्मा है, ऐसी बुद्धि करके—

ओम्। उद्वयन्तमसस्परि स्वः पश्यन्तऽ उत्तरम्।
देवन्देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ १॥

—यजुः० ३५।१४

हे परमेश्वर! आप अन्धकार से पृथक् प्रकाशस्वरूप हैं। आप प्रलय के पश्चात् भी सदा विद्यमान रहते हैं। आप प्रकाशकों के प्रकाशक, चराचर के आत्मा और ज्ञानस्वरूप हैं। आपको सर्वश्रेष्ठ जानकर श्रद्धापूर्वक हम आपकी शरण में आये हैं। नाथ! अब हमारी रक्षा कीजिए।

उदु त्यं जातवेदसन्देवं वहन्ति केतवः।
दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ २॥ —यजुः० ३३।३१

---

१. ईश्वर निराकार है। अथर्ववेद के अनुसार आलंकारिक भाषा में यह विराट् ब्रह्माण्ड उसका शरीर है, द्युलोक उसका मस्तक, भूमि उसके पैर और अन्तरिक्ष उसका धड़ है। भूमि पर उगनेवाले और अन्तरिक्ष में फैले नाना प्रकार के हरे वृक्ष मानो उसकी ग्रीवा हैं। (सम्पादक)

वेद की श्रुति और जगत् के नाना पदार्थ झण्डों के समान उस दिव्य गुणयुक्त, सर्वप्रकाशक, चराचर के आत्मा, वेदप्रकाशक भगवान् को विश्वविद्या की प्राप्ति के लिए उत्तम रीति से जनाते और प्राप्त कराते हैं।

चित्रन्देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवीऽअन्तरिक्षꣳ सूर्यऽआत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा॥ ३॥ —यजुः० ७।४२

जो सब देवों में श्रेष्ठ और बलवान् है, जो सूर्यलोक, प्राण, अपान और अग्नि का भी प्रकाशक है, जो द्युलोक, अन्तरिक्ष और पृथिवीलोक में व्यापक है, जो जड़ और चेतन जगत् का आत्मा= जीवन है, वह चराचर जगत् का प्रकाशक परमात्मा हमारे हृदयों में सदा प्रकाशित रहे।

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतञ्जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतम्प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्भूयश्च शरदः शतात्॥ ४॥ —यजुः० ३६।२४

उस सबके द्रष्टा, धार्मिक विद्वानों के परमहितकारक, सृष्टि से पूर्व, पश्चात् और मध्य में सत्यस्वरूप से विद्यमान रहनेवाले और सर्व जगदुत्पादक ब्रह्म को सौ वर्ष तक देखें। उसके सहारे से सौ वर्ष तक जीयें। सौ वर्ष तक उसका ही गुण–गान सुनें। उसी ब्रह्म का सौ वर्ष तक उपदेश करें। उसी की कृपा से सौ वर्ष तक किसी के अधीन न रहें। उसी ईश्वर की आज्ञापालन और कृपा से सौ वर्ष के उपरान्त भी हम लोग देखें, जीवें, सुनें, सुनावें और स्वतन्त्र रहें।

अथ गायत्री-मन्त्रः

ओम्। भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

—यजुः० ३६।३

सच्चिदानन्द, सकल जगदुत्पादक, प्रकाशकों के प्रकाशक, परमात्मा के सर्वश्रेष्ठ, पापनाशक तेज का हम ध्यान करते हैं। वह परमेश्वर हमारी बुद्धि और कर्मों को उत्तम प्रेरणा करे अर्थात् बुरे कर्मों से छुड़ाकर अच्छे कामों में प्रवृत्त करे।

अथ समर्पणम्

हे ईश्वर दयानिधे! भवत्कृपयानेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थकाममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः।

नमस्कार-मन्त्रः

ओं नमः शम्भवाय च मयोभवाय च
नमः शङ्कराय च मयस्कराय च
नमः शिवाय च शिवतराय च॥

—यजुः० १६।४१

जो सुखस्वरूप और संसार के उत्तम सुखों को देनेवाला, कल्याण का कर्त्ता, मोक्षरूप और धर्म के कामों को ही करनेवाला, अपने भक्तों को धर्म के कामों में युक्त करनेवाला, अत्यन्त मङ्गलरूप और धार्मिक मनुष्यों को मोक्ष देनेहारा है उसको हमारा बारम्बार नमस्कार हो।

इति सन्ध्योपासनविधिः

(२) अथ देवयज्ञ : अग्निहोत्रम्

अथ ऋत्विग्वरणम्

यजमानोक्तिः—**ओम् आवसोः सदने सीद।**

ऋत्विगुक्तिः—**ओं सीदामि।**

यजमानोक्तिः—**ओं तत्सत् श्रीब्रह्मणो द्वितीयप्रहरार्द्धे वैवस्वतमन्वन्तरेऽष्टाविंशतितमे कलियुगे कलिप्रथम-चरणेऽमुक संवत्सरे..... अयने..... ऋतौ..... मासे... पक्षे..... तिथौ..... दिवसे..... लग्ने..... मुहूर्ते..... अत्र..... अहम्..... कर्मकरणाय भवन्तं वृणे।**

ऋत्विगुक्तिः—**वृतोऽस्मि।**

अथ आचमनमन्त्राः

ओम् अमृतोपस्तरणमसि स्वाहा॥ १ ॥ इससे एक

ओम् अमृतापिधानमसि स्वाहा॥ २ ॥ इससे दूसरा

ओं सत्यं यशः श्रीर्मयि श्रीः श्रयतां स्वाहा॥ ३ ॥

—तैत्तिरीय आरण्यक प्र० १०। अनु० ३२, ३५

इससे तीसरा आचमन करके तत्पश्चात् हथेली में जल लेकर नीचे लिखे मन्त्रों से पहले दाहिनी ओर, पश्चात् बायीं ओर के अङ्गों को स्पर्श करें।

अङ्गस्पर्शमन्त्राः

ओं वाङ्म आस्येऽस्तु । इस मन्त्र से मुख,
ओं नसोर्मे प्राणोऽस्तु । इस मन्त्र से नासिका के दोनों छिद्र,
ओम् अक्ष्णोर्मे चक्षुरस्तु । इस मन्त्र से दोनों आँखें,
ओं कर्णयोर्मे श्रोत्रमस्तु । इस मन्त्र से दोनों कान,
ओं बाह्वोर्मे बलमस्तु । इस मन्त्र से दोनों **बाहु**,
ओम् ऊर्वोर्म ओजोऽस्तु ॥ इस मन्त्र से दोनों जंघा,
ओम् अरिष्टानि मेऽङ्गानि तनूस्तन्वा मे सह सन्तु ॥

—पारस्करगृ कण्डिका ३। स० २५

इस मन्त्र से सारे शरीर पर मार्जन करना, सारे शरीर पर जल के छींटे देना ।

अथेश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनामन्त्राः

सब संस्कारों के आदि में निम्नलिखित मन्त्रों के **पाठ** और अर्थ द्वारा एक विद्वान् वा बुद्धिमान् ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना स्थिरचित्त होकर परमात्मा में ध्यान लगाके करे, और सब लोग उस में ध्यान लगाकर सुनें और विचारें—

ओं विश्वा॑नि देव सवितर्दुरि॒तानि॒ परा॑ सुव ।
यद्भ॒द्रं तन्न॒ आ सुव ॥१॥ —यजुः० ३०।३

अर्थ—हे (सवितः) सकल जगत् के उत्पत्तिकर्ता, समग्र ऐश्वर्ययुक्त, (देव) शुद्धस्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके (नः) हमारे (विश्वानि) सम्पूर्ण (दुरितानि) दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःख़ों को (परा सुव) दूर कर दीजिए, (यत्) जो (भद्रम्) कल्याणकारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ है, (तत्) वह सब हमको (आ सुव) प्राप्त कीजिए ॥१॥

तू सर्वेश सकल सुख दाता शुद्धस्वरूप विधाता है ।
उसके कष्ट नष्ट हो जाते शरण तेरी जो आता है ।।
सारे दुर्गुण दुर्व्यसनों से हमको नाथ बचा लीजे ।
मङ्गलमय गुण–कर्म–पदारथ प्रेम–सिन्धु हमको दीजे ।।

हिरण्यगर्भः समवर्त्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत् । स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।२।। –यजुः० १३।४

अर्थ–जो (हिरण्यगर्भः) स्वप्रकाशस्वरूप और जिसने प्रकाश करनेहारे सूर्य–चन्द्रमादि पदार्थ उत्पन्न करके धारण किये हैं, जो (भूतस्य) उत्पन्न हुए सम्पूर्ण जगत् का (जातः) प्रसिद्ध (पतिः) स्वामी (एकः) एक ही चेतनस्वरूप (आसीत्) था, जो (अग्रे) सब जगत् के उत्पन्न होने से पूर्व (समवर्त्तत) वर्त्तमान था, (सः) वह (इमाम्) इस (पृथिवीम्) भूमि (उत्) और (द्याम्) सूर्यादि को (दाधार) धारण कर रहा है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) शुद्ध परमात्मा के लिए (हविषा) ग्रहण करने योग्य योगाभ्यास और अतिप्रेम से (विधेम) विशेष भक्ति किया करें ।।२।।

तू ही स्वयंप्रकाश, सुचेतन, सुखस्वरूप शुभ त्राता है ।
सूर्य–चन्द्र लोकादिक को तू रचता और टिकाता है ।।
पहिले था अब भी तू ही है घट–घट में व्यापक स्वामी ।
योग, भक्ति, तप द्वारा तुझको, पावें हम अन्तर्यामी ।।

य आत्मदा बलदा यस्य विश्व उपासते प्रशिषं यस्य देवाः । यस्य छायाऽमृतं यस्य मृत्युः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।३।। –यजुः० २५।१३

अर्थ–(यः) जो (आत्मदाः) आत्मज्ञान का दाता,

(बलदाः) शरीर, आत्मा और समाज के बल का देनेहारा, (यस्य) जिसकी (विश्वे) सब (देवाः) विद्वान् लोग (उपासते) उपासना करते हैं और (यस्य) जिसका (प्रशिषम्) प्रत्यक्ष, सत्यस्वरूप शासन और न्याय अर्थात् शिक्षा को मानते हैं, (यस्य) जिसका आश्रय ही मोक्ष सुखदायक है, जिसका न मानना, अर्थात् भक्ति न करना ही (मृत्युः) मृत्यु आदि दुःख का हेतु है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप, (देवाय) सकल ज्ञान के देनेहारे परमात्मा की प्राप्ति के लिए (हविषा) आत्मा और अन्तःकरण से (विधेम) भक्ति अर्थात् उसी की आज्ञापालन करने में तत्पर रहें ॥३॥

तू ही आत्मज्ञान बल दाता, सुयश विज्ञजन गाते हैं ।
तेरी चरण-शरण में आकर, भवसागर तर जाते हैं ॥
तुझको ही जपना जीवन है, मरण तुझे विसराने में ।
मेरी सारी शक्ति लगे प्रभु, तुझसे लगन लगाने में ॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकऽइद्राजा जगतो बभूव । य ईशेऽअस्य द्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥४॥ —यजुः० २३।३

अर्थ—(यः) जो (प्राणतः) प्राणवाले और (निमिषतः) अप्राणिरूप (जगतः) जगत् का (महित्वा) अपने अनन्त महिमा से (एकः इत्) एक ही (राजा) विराजमान राजा (बभूव) है, (यः) जो (अस्य) इस (द्विपदः) मनुष्यादि और (चतुष्पदः) गौ आदि प्राणियों के शरीर की (ईशे) रचना करता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखस्वरूप (देवाय) सकलैश्वर्य के देनेहारे परमात्मा की उपासना अर्थात् (हविषा) अपनी सकल उत्तम सामग्री को उसकी आज्ञा-पालन में समर्पित करके (विधेम) विशेष भक्ति करें ॥४॥

तूने अपनी अनुपम माया से जग-ज्योति जगाई है ।
मनुज और पशुओं को रचकर निज महिमा प्रगटाई है ।।
अपने हिय-सिंहासन पर श्रद्धा से तुझे बिठाते हैं ।
भक्ति-भाव से भेंटें लेकर शरण तुम्हारी आते हैं ।।

येन द्यौरुग्रा पृथिवी च दृढा येन स्वः स्तभितं येन नाकः । योऽअन्तरिक्षे रजसो विमानः कस्मै देवाय हविषा विधेम ।।५।। —यजुः० ३२।६

अर्थ—(येन) जिस परमात्मा ने (उग्रा) तीक्ष्ण स्वभाववाले (द्यौः) सूर्य आदि (च) और (पृथिवी) भूमि को (दृढा) धारण, (येन) जिस जगदीश्वर ने (स्वः) सुख को (स्तभितम्) धारण और (येन) जिस ईश्वर ने (नाकः) दुःखरहित मोक्ष को धारण किया है, (यः) जो (अन्तरिक्षे) आकाश में (रजसः) सब लोक-लोकान्तरों को (विमानः) विशेष मानयुक्त अर्थात् जैसे आकाश में पक्षी उड़ते हैं, वैसे सब लोकों का निर्माण करता और भ्रमण कराता है, हम लोग उस (कस्मै) सुखदायक (देवाय) कामना करने के योग्य परब्रह्म की प्राप्ति के लिए (हविषा) सब सामर्थ्य से (विधेम) विशेष भक्ति करें ।।५।।

तार, रवि चन्द्रादि बनाकर निज प्रकाश चमकाया है ।
धरणी को धारण कर तूने कौशल अलख लखाया है ।।
तू ही विश्व-विधाता, पोषक, तेरा ही हम ध्यान धरें ।
शुद्ध भाव से भगवन् ! तेरे भजनामृत का पान करें ।।

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव । यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नोऽअस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ।।६।। —ऋ० १०।१२१।१०

अर्थ–हे (प्रजापते) सब प्रजा के स्वामी परमात्मन् ! (त्वत्) आपसे (अन्यः) भिन्न, दूसरा कोई (ता) उन, (एतानि) इन (विश्वा) सब (जातानि) उत्पन्न हुए जड़ चेतनादिकों को (न) नहीं (परि बभूव) तिरस्कार करता है, अर्थात् आप सर्वोपरि हैं। (यत्कामाः) जिस–जिस पदार्थ की कामनावाले हम लोग (ते) आपका (जुहुमः) आश्रय लेवें और वाञ्छा करें, (तत्) उस–उसकी कामना (नः) हमारी (अस्तु) सिद्ध होवे, जिससे (वयम्) हम लोग (रयीणाम्) धनैश्वर्यों के (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥६॥

तुझसे बड़ा न कोई जग में, सबमें तु ही समाया है ।
जड़ चेतन सब तेरी रचना, तुझमें आश्रय पाया है ॥
हे सर्वोपरि विभो ! विश्व का तूने साज सजाया है ।
धन दौलत भरपूर दीजिए यही भक्त को भाया है ॥

स नो बन्धुर्जनिता स विधाता धामानि वेद भुवनानि विश्वा । यत्र देवा अमृतमानशानास्तृतीये धामन्नध्यैरयन्त ॥७॥ –यजुः० ३२।१०

अर्थ–हे मनुष्यो ! (सः) वह परमात्मा (नः) अपने लोगों का (बन्धुः) भ्राता के समान सुखदायक, (जनिता) सकल जगत् का उत्पादक, (सः) वह (विधाता) सब कामों का पूर्ण करनेहारा, (विश्वा) सम्पूर्ण लोकमात्र और (धामानि) नाम, स्थान, जन्मों को (वेद) जानता है और (यत्र) जिस (तृतीये) सांसारिक सुख–दुःख से रहित, नित्यानन्दयुक्त (धामन्) मोक्षस्वरूप धारण करनेहारे परमात्मा में (अमृतम्) मोक्ष को (आनशानाः) प्राप्त होके (देवाः) विद्वान् लोग (अध्यैरयन्त) स्वेच्छापूर्वक विचरते हैं, वही परमात्मा अपना गुरु, आचार्य, राजा और न्यायाधीश है

अपने लोग मिलके सदा उसकी भक्ति किया करें ।।७।।

तू गुरु है, प्रजेश भी तू है, पाप-पुण्य फल-दाता है ।
तू ही सखा बन्धु मम तू ही, तुझसे ही सब नाता है ।।
भक्तों को इस भव-बन्धन से, तू ही मुक्त कराता है ।
तू है अज, अद्वैत, महाप्रभु सर्वकाल का ज्ञाता है ।।

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ।।८।। —यजुः० ४०।१६

अर्थ—हे (अग्ने) स्वप्रकाश, ज्ञानस्वरूप, सब जगत् के प्रकाश करनेहारे, (देव) सकल सुखदाता परमेश्वर ! आप जिससे (विद्वान्) सम्पूर्ण विद्यायुक्त हैं, कृपा करके (अस्मान्) हम लोगों को (राये) विज्ञान वा राज्यादि ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिए (सुपथा) अच्छे, धर्मयुक्त, आप्त लोगों के मार्ग से (विश्वानि) सम्पूर्ण (वयुनानि) प्रज्ञान और उत्तम कर्म (नय) प्राप्त कराइए और (अस्मत्) हमसे (जुहुराणम्) कुटिलतायुक्त (एनः) पापरूप कर्म को (युयोधि) दूर कीजिए। इस कारण हम लोग (ते) आपकी (भूयिष्ठाम्) बहुत प्रकार की स्तुतिरूप (नमः उक्तिम्) नम्रतापूर्वक प्रशंसा (विधेम) सदा किया करें और सर्वदा आनन्द में रहें ।।८।।

तू है स्वयं प्रकाश रूप प्रभु, सबका सिरजन हार तु ही ।
रसना निशि-दिन रटे तुम्हीं को, मन में बसता सदा तु ही ।।
कुटिल पाप से हमें बचाते रहना, हरदम दयानिधान ।
अपने भक्तजनों को भगवन् ! दीजे यही विशद वरदान ।।

इतीश्वरस्तुतिप्रार्थनोपासनाप्रकरणम् ।

(३) अथ स्वस्तिवाचनम्

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥ १ ॥ —ऋ० १।१।१

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥ २ ॥ —ऋ० १।१।९

स्वस्ति नो मिमीतामश्विना भगः स्वस्ति देव्यदितिरनर्वणः। स्वस्ति पूषा असुरो दधातु नः स्वस्ति द्यावापृथिवी सुचेतुना॥ ३ ॥ —ऋ० ५।५१।११

स्वस्तये वायुमुप ब्रवामहै सोमं स्वस्ति भुवनस्य यस्पतिः। बृहस्पतिं सर्वगणं स्वस्तये स्वस्तय आदित्यासो भवन्तु नः॥ ४ ॥ —ऋ० ५।५१।१२

विश्वे देवा नो अद्या स्वस्तये वैश्वानरो वसुरग्निः स्वस्तये। देवा अवन्त्वृभवः स्वस्तये स्वस्ति नो रुद्रः पात्वंहसः॥ ५ ॥ —ऋ० ५।५१।१३

स्वस्ति मित्रावरुणा स्वस्ति पथ्ये रेवति। स्वस्ति न इन्द्रश्चाग्निश्च स्वस्ति नो अदिते कृधि॥ ६ ॥ —ऋ० ५।५१।१४

स्वस्ति पन्थामनु चरेम सूर्याचन्द्रमसाविव।
पुनर्ददताघ्नता जानता सं गमेमहि॥ ७॥

—ऋ० ५।५१।१५

ये देवानां यज्ञिया यज्ञियानां मनोर्यजत्रा अमृता ऋतज्ञाः। ते नो रासन्तामुरुगायमद्य यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥ ८॥ —ऋ० ७।३५।१५

येभ्यो माता मधुमत्पिन्वते पयः पीयूषं द्यौरदितिरद्रिबर्हाः। उक्थशुष्मान् वृषभरान्त्स्वप्नसस्ताँ आदित्याँ अनु मदा स्वस्तये॥ ९॥ —ऋ० १०।६३।३

नृचक्षसो अनिमिषन्तो अर्हणा बृहद्देवासो अमृतत्वमानशुः। ज्योतीरथा अहिमाया अनागसो दिवो वर्ष्माणं वसते स्वस्तये॥ १०॥—ऋ० १०।६३।४

सम्राजो ये सुवृधो यज्ञमाययुरपरिह्वृता दधिरे दिवि क्षयम्। ताँ आ विवास नमसा सुवृक्तिभिर्महो आदित्याँ अदितिं स्वस्तये॥ ११॥ —ऋ० १०।६३।५

को वः स्तोमं राधति यं जुजोषथ विश्वे देवासो मनुषो यतिष्ठन। को वोऽध्वरं तुविजाता अरं करद्यो नः पर्षदत्यंहः स्वस्तये॥ १२॥ —ऋ० १०।६३।६

येभ्यो होत्रां प्रथमामायेजे मनुः समिद्धाग्निर्मनसा सप्तहोतृभिः। त आदित्या अभयं शर्म यच्छत सुगा नः कर्त सुपथा स्वस्तये॥ १३॥ —ऋ० १०।६३।७

य ईशिरे भुवनस्य प्रचेतसो विश्वस्य स्थातुर्जगतश्च मन्तवः। ते नः कृतादकृतादेनसस्पर्यद्या देवासः पिपृता स्वस्तये॥ १४॥ —ऋ० १०।६३।८

भरेष्विन्द्रं सुहवं हवामहेऽहोमुचं सुकृतं दैव्यं जनम्। अग्निं मित्रं वरुणं सातये भगं द्यावापृथिवी मरुतः स्वस्तये॥ १५॥ —ऋ० १०।६३।९

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्। दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥ १६॥ —ऋ० १०।६३।१०

विश्वे यजत्रा अधि वोचतोतये त्रायध्वं नो दुरेवाया अभिह्रुतः। सत्यया वो देवहूत्या हुवेम शृण्वतो देवा अवसे स्वस्तये॥ १७॥ —ऋ० १०।६३।११

अपामीवामप विश्वामनाहुतिमपारातिं दुर्विदत्रामघायतः। आरे देवा द्वेषो अस्मद्युयोतनोरु णः शर्म यच्छता स्वस्तये॥ १८॥ —ऋ० १०।६३।१२

अरिष्टः स मर्तो विश्व एधते प्र प्रजाभिर्जायते धर्मणस्परि। यमादित्यासो नयथा सुनीतिभिरति विश्वानि दुरिता स्वस्तये॥ १९॥ —ऋ० १०।६३।१३

यं देवासोऽवथ वाजसातौ यं शूरसाता मरुतो
हिते धने। प्रातर्यावाणं रथमिन्द्र सानसिमरिष्यन्तमा
रुहेमा स्वस्तये॥ २०॥ —ऋ० १०।६३।१४

स्वस्ति नः पथ्यासु धन्वसु स्वस्त्य१प्सु वृजने
स्वर्वति। स्वस्ति नः पुत्रकृथेषु योनिषु स्वस्ति राये
मरुतो दधातन॥ २१॥ —ऋ० १०।६३।१५

स्वस्तिरिद्धि प्रपथे श्रेष्ठा रेक्णस्वत्यभि या
वाममेति। सा नो अमा सो अरणे नि पातु स्वावेशा
भवतु देवगोपा॥ २२॥ —ऋ० १०।६३।१६

इषे त्वोर्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता
प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय
भागं प्रजावतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा व स्तेनऽईशत
माघशꣳसो ध्रुवाऽअस्मिन् गोपतौ स्यात
बह्वीर्यजमानस्य पशून् पाहि॥ २३॥ —यजुः० १।१

आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासोऽ
अपरीतासऽउद्भिदः। देवा नो यथा सदमिदवृधेऽ-
असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे॥ २४॥

—यजुः० २५।१४

देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानाꣳ रातिरभि
नो निवर्तताम्। देवानाꣳ सख्यमुपसेदिमा वयं देवा
नऽआयुः प्रतिरन्तु जीवसे॥ २५॥ —यजुः० २५।१५

तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्व-
मवसे हूमहे वयम्। पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे
रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये॥ २६॥—यजुः० २५।१८

स्वस्ति नऽ इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा
विश्ववेदाः। स्वस्ति नस्ताक्ष्र्योऽअरिष्टनेमिः स्वस्ति
नो बृहस्पतिर्दधातु॥ २७॥ —यजुः० २५।१९

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्ष-
भिर्यजत्राः। स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाꣳसस्तनूभिर्व्यशेमहि
देवहितं यदायुः॥ २८॥ —यजुः० २५।२१

अग्न आ याहि वीतये गृणानो हव्यदातये।
नि होता सत्सि बर्हिषि॥ २९॥ —साम०पू० १।१।१

त्वमग्ने यज्ञानां होता विश्वेषां हितः।
देवेभिर्मानुषे जने॥ ३०॥ —साम० पू० १।१।२

ये त्रिषप्ताः परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रतः।
वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे॥ ३१॥
—अथर्व० १।१।१

इति स्वस्तिवाचनम्

(४) अथ शान्तिकरणम्

शं न॑ इन्द्राग्नी भ॑वतामवो॑भिः शं न इन्द्रावरु॑णा रातह॑व्या। शमिन्द्रासोमा॑ सुवि॒ताय॒ शं योः शं न इन्द्रा॑पूषणा॒ वाज॑सातौ ॥ १ ॥ —ऋ० ७।३५।१

शं नो॒ भग॒ः शमु॑ न॒ः शंसो॑ अस्तु शं न॒ः पुर॑न्धि॒ः शमु॑ सन्तु राय॑ः। शं न॑ः स॒त्यस्य॑ सु॒यम॑स्य॒ शंस॒ः शं नो॑ अर्य॒मा पु॑रुजा॒तो अ॑स्तु ॥ २ ॥ —ऋ० ७।३५।२

शं नो॑ धा॒ता शमु॑ ध॒र्ता नो॑ अस्तु शं न॑ उरू॒ची भ॑वतु स्व॒धाभि॑ः। शं रोद॑सी बृ॒ह॒ती शं नो॒ अद्रि॒ः शं नो॑ दे॒वानां॑ सु॒हवा॑नि सन्तु ॥ ३ ॥ —ऋ० ७।३५।३

शं नो॑ अ॒ग्निर्ज्योति॑रनीको अस्तु शं नो॑ मि॒त्रावरु॑णा-व॒श्विना॒ शम्। शं न॑ः सु॒कृतां॑ सु॒कृतानि॑ सन्तु शं न॑ इषि॒रो अ॒भि वा॑तु॒ वात॑ः ॥ ४ ॥ —ऋ० ७।३५।४

शं नो॒ द्यावा॑पृथि॒वी पू॒र्वहू॑तौ॒ शम॒न्तरि॑क्षं दृ॒शये॑ नो अस्तु। शं न॒ ओष॑धीर्व॒निनो॑ भवन्तु॒ शं नो॒ रज॑स॒स्पति॑रस्तु जि॒ष्णुः ॥ ५ ॥ —ऋ० ७।३५।५

शं न॒ इन्द्रो॒ वसु॑भिर्दे॒वो अ॑स्तु॒ शमा॑दि॒त्येभि॒र्वरु॑णः सु॒शंस॑ः। शं नो॑ रु॒द्रो रु॒द्रेभि॒र्जला॑ष॒ः शं न॒स्त्वष्टा॒ ग्नाभि॑रि॒ह शृ॑णोतु ॥ ६ ॥ —ऋ० ७।३५।६

शं नः सोमो भवतु ब्रह्म शं नः शं नो ग्रावाणः
शमु सन्तु यज्ञाः। शं नः स्वरूणां मितयो भवन्तु शं
नः प्रस्वः शम्वस्तु वेदिः ॥ ७ ॥ —ऋ० ७।३५।७

शं न सूर्य उरुचक्षा उदेतु शं नश्चतस्रः प्रदिशो
भवन्तु। शं नः पर्वता ध्रुवयो भवन्तु शं नः सिन्धवः
शमु सन्त्वापः ॥ ८ ॥ —ऋ० ७।३५।८

शं नो अदितिर्भवतु व्रतेभिः शं नो भवन्तु मरुतः
स्वर्काः। शं नो विष्णुः शमु पूषा नो अस्तु शं नो
भवित्रं शम्वस्तु वायुः ॥ ९ ॥ —ऋ० ७।३५।९

शं नो देवः सविता त्रायमाणः शं नो भवन्तूषसो
विभातीः। शं नः पर्जन्यो भवतु प्रजाभ्यः शं नः
क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥ १० ॥ —ऋ० ७।३५।१०

शं नो देवा विश्वदेवा भवन्तु शं सरस्वती सह
धीभिरस्तु। शमभिषाचः शमु रातिषाचः शं नो दिव्याः
पार्थिवाः शं नो अप्याः ॥ ११ ॥ —ऋ० ७।३५।११

शं नः सत्यस्य पतयो भवन्तु शं नो अर्वन्तः शमु
सन्तु गावः। शं न ऋभवः सुकृतः सुहस्ताः शं नो
भवन्तु पितरो हवेषु ॥ १२ ॥ —ऋ० ७।३५।१२

शं नो अज एकपाद्देवो अस्तु शं नोऽहिर्बुध्न्यः
शं समुद्रः। शं नो अपां नपात्पेरुरस्तु शं नः
पृश्निर्भवतु देवगोपा ॥ १३ ॥ —ऋ० ७।३५।१३

इन्द्रो विश्वस्य राजति। शन्नोऽअस्तु द्विपदे शं चतुष्पदे ॥ १४ ॥ —यजुः० ३६।८

शन्नो वातः पवताᳫं शन्नस्तपतु सूर्य्यः। शन्नः कनिक्रदद् देवः पर्जन्योऽअभि वर्षतु ॥ १५ ॥

—यजुः० ३६।१०

अहानि शम्भवन्तु नः शᳫं रात्रीः प्रति धीयताम्। शन्न इन्द्राग्नी भवतामवोभिः शन्नऽइन्द्रावरुणा रातहव्या। शन्न इन्द्रापूषणा वाजसातौ शमिन्द्रा-सोमा सुविताय शँयोः ॥ १६ ॥ —यजुः० ३६।११

शन्नो देवीरभिष्टयऽआपो भवन्तु पीतये।
शँयोरभिस्त्रवन्तु नः ॥ १७ ॥ —यजुः० ३६।१२

द्यौः शान्तिरन्तरिक्षᳫं शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वᳫं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥ १८ ॥ —यजुः० ३६।१७

तच्चक्षुर्देवहितम्पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतᳫं शृणुयाम शरदः शतम्प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतम्भूयश्च शरदः शतात् ॥ १९ ॥ —यजुः० ३६।२४

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति। दूरङ्गमञ्ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २० ॥ —यजुः० ३४।१

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः। यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २१ ॥ —यजुः० ३४।२

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्जोतिरन्तरमृतं प्रजासु। यस्मान्न ऋते किञ्चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २२ ॥ —यजुः० ३४।३

येनेदम्भूतं भुवनम्भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्। येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २३ ॥ —यजुः० ३४।४

यस्मिन्नृचः साम यजूंꣳषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः। यस्मिँश्चित्तꣳ सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २४ ॥ —यजुः० ३४।५

सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान् नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिनऽइव। हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु ॥ २५ ॥* —यजुः० ३४।६

---

* टिप्पणी—मन्त्र २० से २५ तक के मन्त्र रात्रि में सोते समय बोलने के भी हैं।

१ २ ३ २उ ३ १ २र ३ १ २र
सं नः पवस्व शं गवे शं जनाय शमर्वते।
१ २ ३ १ २
शं राजन्नोषधीभ्यः ॥ २६ ॥—साम० उत्तरा० १।१।३

अभयं नः करत्यन्तरिक्षमभयं द्यावापृथिवी उभे इमे। अभयं पश्चादभयं पुरस्तादुत्तरादधरादभयं नो अस्तु॥ २७॥ —अथर्व० १९।१५।५

अभयं मित्रादभयममित्रादभयं ज्ञातादभयं परोक्षात्। अभयं नक्तमभयं दिवा नः सर्वा आशा मम मित्रं भवन्तु॥ २८॥ —अथर्व० १९।१५।६

॥ इति शान्तिकरणम् ॥

अग्न्याधानमन्त्रः

ओं भूर्भुवः स्वः। —गोभिलगृह्य० १।१।११

इस मन्त्र का उच्चारण करके ब्राह्मण, क्षत्रिय वा वैश्य के घर से अग्नि ला, अथवा घृत का दीपक जला, उससे कपूर में लगा, किसी एक पात्र में धरकर उसमें छोटी-छोटी समिधा लगाके यजमान वा पुरोहित उस पात्र को दोनों हाथों में उठा, यदि गर्म हो तो चिमटे से पकड़कर निम्न मन्त्र से अग्न्याधान करे—

ओं भूर्भुवः स्वर्द्यौरिव भूम्ना पृथिवीव वरिम्णा। तस्यास्ते पृथिवि देवयजनि पृष्ठेऽग्निमन्नादमन्नाद्यायादधे॥
—यजुः० ३।५

इस मन्त्र से वेदी के बीच में अग्नि को धर, उसपर छोटे-

छोटे काष्ठ और थोड़ा कपूर धर, निम्न मन्त्र पढ़के व्यजन=पंखे से अग्नि को प्रदीप्त करे—

अग्नि प्रदीप्त करने का मन्त्र

ओम् उद्बुध्यस्वाग्ने प्रतिजागृहि त्वमिष्टापूर्त्ते सꣳसृजेथामयं च। अस्मिन्त्सधस्थेऽअध्युत्तरस्मिन् विश्वे देवा यजमानश्च सीदत॥ —यजुः० १५।५४

जब अग्नि समिधाओं में प्रविष्ट होने लगे तब चन्दन की अथवा पलाश आदि की आठ-आठ अंगुल की तीन समिधाएँ घृत में डुबा, उनमें से एक-एक निकाल निम्नलिखत मन्त्रों से एक-एक समिधा को अग्नि में चढ़ाएँ—

समिदाधान के मन्त्र

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्द्धस्व चेद्ध वर्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्म-वर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम॥ १ ॥ —आ०गृह्य० १।१०।१२

इस मन्त्र से पहली समिधा चढ़ाएँ।

ओं समिधाग्निं दुवस्यत घृतैर्बोधयतातिथिम्। आस्मिन् हव्या जुहोतन स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥ २ ॥

इससे और

सुसमिद्धाय शोचिषे घृतं तीव्रं जुहोतन। अग्नये जातवेदसे स्वाहा। इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम॥ ३ ॥ —यजुः० ३।१-२

इस मन्त्र से अर्थात् दोनों मन्त्रों से दूसरी समिधा चढ़ाएँ।

तन्त्वा समिद्भिरङ्गिरो घृतेन वर्द्धयामसि। बृहच्छोचा यविष्ठ्य स्वाहा॥ इदमग्नयेऽङ्गिरसे—इदन्न मम॥ ४॥ —यजुः० ३।३

इस मन्त्र से तीसरी समिधा की आहुति देवें।

इन मन्त्रों से समिदाधान करके नीचे लिखे मन्त्र से पाँच घृत की आहुति देनी।

घृताहुति-मन्त्रः

ओम् अयन्त इध्म आत्मा जातवेदस्तेनेध्यस्व वर्धस्व चेद्ध वर्द्धय चास्मान् प्रजया पशुभिर्ब्रह्म-वर्चसेनान्नाद्येन समेधय स्वाहा॥ इदमग्नये जातवेदसे—इदन्न मम॥ १॥ —आ० गृह्य० १।१०।१२

तत्पश्चात् अञ्जलि में जल लेके वेदी के पूर्व आदि दिशा और चारों ओर छिड़काएँ—

जल-प्रसेचन-मन्त्राः

ओम् अदितेऽनुमन्यस्व॥ —इससे पूर्व दिशा में

ओम् अनुमतेऽनुमन्यस्व॥ —इससे पश्चिम दिशा में

ओं सरस्वत्यनुमन्यस्व॥ —इससे उत्तर दिशा में

—गोभि० गृह्य० १।३।१-३

ओं देव सवितः प्रसुव यज्ञं प्रसुव यज्ञपतिं भगाय। दिव्यो गन्धर्वः केतपूः केतं नः पुनातु वाचस्पतिर्वाचं नः स्वदतु॥ —यजुः० ३०।१

इस मन्त्र से वेदी के चारों ओर जल छिड़काएँ।*

निम्न आहुतियाँ मुख्य होम के आदि और अन्त में दी जाती हैं। इनमें यज्ञकुण्ड के उत्तरभाग में जो एक आहुति और यज्ञकुण्ड के दक्षिणभाग में जो दूसरी आहुति देनी होती है, उनका नाम 'आघारावाज्याहुति' है और जो कुण्ड के मध्य में दो आहुतियाँ दी जाती हैं उनका नाम 'आज्यभागाहुति' है; अतः घृतपात्र में से स्रुवा को भर अंगूठा, मध्यमा और अनामिका से स्रुवा को पकड़के—

आघारावाज्यभागाहुति–मन्त्रः

ओम् अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥

इस मन्त्र से वेदी के उत्तरभाग में अग्नि पर आहुति दें।

ओम् सोमाय स्वाहा॥ इदं सोमाय—इदन्न मम॥

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिणभाग में प्रज्वलित समिधाओं पर आहुति दें—

आज्यभागाहुतिमन्त्रः

ओम् प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा॥ इदमिन्द्राय—इदन्न मम॥

इन दोनों मन्त्रों से वेदी के मध्य में दो आहुति दें।

---

* जल छिड़कने का विधि ऐसा है—पूर्व में—दक्षिण से उत्तर की ओर, पश्चिम में—दक्षिण से उत्तर की ओर, उत्तर में—पश्चिम से पूर्व की ओर तथा 'देवसवितः' मन्त्र से पूर्व से आरम्भ करके वेदी के चारों ओर जल छिड़कना चाहिए। —सम्पादक

प्रातःकालीन प्रधान होम : 'मुख्य होम'

आघारावाज्यभागाहुति चार देके आगे दिये हुए मन्त्रों से प्रात:काल अग्निहोत्र करें।

प्रातःकाल आहुति के मन्त्र

ओं सूर्यो ज्योतिर्ज्योतिः सूर्यः स्वाहा॥ १॥

—यजुः० ३।९

ओं सूर्यो वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा॥ २॥

—यजुः० ३।९

ओं ज्योतिः सूर्यः सूर्यो ज्योतिः स्वाहा॥ ३॥

—यजुः० ३।९

ओं सजूर्देवेन सवित्रा सजूरुषसेन्द्रवत्या।
जुषाणः सूर्यो वेतु स्वाहा॥ ४॥ —यजुः० ३।१०

प्रातः–सायंकालीनमन्त्राः

अब निम्नलिखित मन्त्रों से प्रात:–सायं आहुति देनी चाहिए—

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा।
इदमग्नये प्राणाय—इदन्न मम॥ १॥

ओं भुववार्यवेऽपानाय स्वाहा॥
इदं वायवेऽपानाय—इदन्न मम॥ २॥

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा।
इदमादित्याय व्यानाय—इदन्न मम॥ ३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापान-व्यानेभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणा-पानव्यानेभ्यः—इदन्न मम ॥ ४ ॥

ओम् आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा ॥ ५ ॥

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा ॥ ६ ॥

—यजुः० ३२।१४

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रं तन्न आ सुव स्वाहा ॥ —यजुः० ३०।३

ओम् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नमऽउक्तिं विधेम स्वाहा ॥ —यजुः० ४०।१६

सायंकालीन-होममन्त्राः [आहिताग्निहोमः]

अब निम्न मन्त्रों से सायंकाल में अग्निहोत्र करें—

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ १ ॥

—यजुः० ३।९

ओम् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा ॥ २ ॥

—यजुः० ३।९

अब तीसरे मन्त्र का मन में उच्चारण करके तीसरी आहुति देनी।

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा ॥ ३ ॥

—यजुः० ३।९

ओम् सजूर्देवेन सवित्रा सजू रात्र्येन्द्रवत्या। जुषाणोऽअग्निर्वेतु स्वाहा॥ ४॥ —यजुः० ३।१०

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा॥ १॥

ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा॥ २॥

ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा॥ ३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापान-व्यानेभ्यः स्वाहा॥ ४॥

ओम् आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा॥ ५॥

ओम् सर्वं वैं पूर्णꣳस्वाहा॥

इस मन्त्र को तीन बार बोलकर तीन पूर्णाहुति देवें।

□ □ □

[यदि सायंकाल पृथक् यज्ञ करना हो तो निम्न मन्त्रों से आहुति दें]

सायंकाल के होम की पूर्ण विधि

आचमन से लेकर आधारावाज्यभागाहुति देकर नीचे लिखे प्रकार अग्निहोत्र करें—

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा॥ १॥

ओम् अग्निर्वर्चो ज्योतिर्वर्चः स्वाहा॥ २॥

अब तीसरे मन्त्र को मन से उच्चारण करके तीसरी आहुति देनी चाहिए—

ओम् अग्निर्ज्योतिर्ज्योतिरग्निः स्वाहा॥ ३॥

ओम् सजूर्देवेन सवित्रा सजूरात्र्येन्द्रवत्या। जुषाणो अग्निर्वेतु स्वाहा॥ ४॥

प्रातः-सायंकालीन आहुतिमन्त्राः

ओं भूरग्नये प्राणाय स्वाहा॥
इदमग्नये प्राणाय—इदन्न मम॥ १॥
ओं भुवर्वायवेऽपानाय स्वाहा॥
इदं वायवेऽपानाय—इदन्न मम॥ २॥
ओं स्वरादित्याय व्यानाय स्वाहा॥
इदमादित्याय व्यानाय—इदन्न मम॥ ३॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणापान-व्यानेभ्यः स्वाहा॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः प्राणा-पानव्यानेभ्यः—इदन्न मम॥ ४॥

ओं आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरों स्वाहा॥ ५॥

ओं यां मेधां देवगणाः पितरश्चोपासते। तया मामद्य मेधयाऽग्ने मेधाविनं कुरु स्वाहा॥ ६॥

—यजुः० ३०।१४

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद् भद्रन्तन्न आ सुव॥ ७॥ —यजुः० ३०।३

ओम् अग्ने नय सुपथा रायेऽअस्मान् विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्। युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ ८ ॥[1] —यजुः० ४०। १६

पूर्णाहुति-प्रकरणम्

आघारावाज्याहुतिमन्त्राः

ओम् अग्नये स्वाहा॥ इदमग्नये—इदन्न मम॥

इस मन्त्र से वेदी के उत्तरभाग में आहुति दें,

ओं सोमाय स्वाहा॥ इदं सोमाय—इदन्न मम॥

—गो०गृ० १। ८। २४

इस मन्त्र से वेदी के दक्षिणभाग में आहुति दें।

आज्यभागाहुतिमन्त्राः

ओं प्रजापतये स्वाहा।

इदं प्रजापतये—इदन्न मम॥

ओम् इन्द्राय स्वाहा।

इदमिन्द्राय—इदन्न मम॥

इन दो मन्त्रों से वेदी के मध्य में आहुति देनी, उसके पश्चात् उसी घृतपात्र में से स्रुवा को भरके प्रज्वलित समिधाओं पर व्याहृति की चार आहुति देवें।

---

१. सामग्री की आहुति केवल प्रातः और सायंकालीन मन्त्रों से देनी है। शेष सब घृत-आहुतियाँ हैं। हाँ, यदि गायत्री अथवा 'विश्वानि देव' मन्त्र से अधिक आहुतियाँ देनी हों तो घृत के साथ सामग्री की आहुतियाँ भी दी जानी चाहिएँ।

व्याहृत्याहुतिमन्त्राः

ओं भूरग्नये स्वाहा ॥ इदमग्नये—इदन्न मम ॥ १ ॥

ओं भुवर्वायवे स्वाहा ॥ इदं वायवे—इदन्न मम ॥ २ ॥

ओं स्वरादित्याय स्वाहा ॥ इदमादित्याय—इदन्न मम ॥ ३ ॥

ओं भूर्भुवः स्वरग्निवाय्वादित्येभ्यः स्वाहा ॥ इदमग्निवाय्वादित्येभ्यः—इदन्न मम ॥ ४ ॥

ये चार घी की आहुति देकर निम्न मन्त्र से स्विष्टकृत् होमाहुति दें। यह एक ही है। यह घृत की अथवा भात की देनी चाहिए।

स्विष्टकृदाहुतिमन्त्रः

ओं यदस्य कर्मणोऽत्यरीरिचं यद्वा न्यूनमिहाकरम्। अग्निष्टत्स्विष्टकृद्विद्यात्सर्वं स्विष्टं सुहुतं करोतु मे। अग्नये स्विष्टकृते सुहुतहुते सर्वप्रायश्चित्ताहुतीनां कामानां समर्द्धयित्रे सर्वान्नः कामान्त्समर्द्धय स्वाहा ॥ इदमग्नये स्विष्टकृते—इदन्न मम ॥

—आश्व० १।१०।२२

इससे एक आहुति करके प्राजापत्याहुति आगेवाले मन्त्र को मन में बोलके देनी चाहिए—

प्राजापत्याहुतिमन्त्रः

ओं प्रजापतये स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम॥

इससे मौन करके एक आहुति देकर चार आज्याहुति घृत की देवें।

आज्याहुतिमन्त्राः (पवमानाहुतयः)

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्न आयूंषि पवस आ सुवोर्जमिषं च नः॥ आरे बाधस्व दुच्छुनां स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम॥ १॥ —ऋ० ९।६६।१९

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्निर्ऋषिः पवमानः पाञ्चजन्यः पुरोहितः॥ तमीमहे महागयं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय-इदन्न मम॥ २॥ —ऋ० ९।६६।२०

ओं भूर्भुवः स्वः। अग्ने पवस्व स्वपा अस्मे वर्चः सुवीर्यम्॥ दधद्रयिं मयि पोषं स्वाहा॥ इदमग्नये पवमानाय—इदन्न मम॥ ३॥ —ऋ० ९।६६।२१

ओं भूर्भुवः स्वः। प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परि ता बभूव। यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणां स्वाहा॥ इदं प्रजापतये—इदन्न मम॥ ४॥ —ऋ० १०।१२१।१०

इनसे घृत की चार आहुति करके "अष्टाज्याहुति" के निम्न-लिखित मन्त्रों से सर्वत्र मंगल-कार्यों में आठ आहुति देवें। ये आठ आहुतिमन्त्र ये हैं—

अष्टाज्याहुतिमन्त्राः

ओं त्वं नोऽअग्ने वरुणस्य विद्वान् देवस्य हेळोऽव यासिसीष्ठाः। यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वा द्वेषांसि प्र मुमुग्ध्यस्मत् स्वाहा। इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम॥ १॥ —ऋ० ४।१।४

ओं स त्वं नो अग्नेऽवमो भवोती नेदिष्ठोऽअस्या उषसो व्युष्टौ। अव यक्ष्व नो वरुणं रराणो वीहि मृळीकं सुहवो न एधि स्वाहा॥ इदमग्नीवरुणाभ्याम्—इदन्न मम॥ २॥ —ऋ० ४।१।५

ओम् इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय। त्वामवस्युरा चके स्वाहा॥ इदं वरुणाय—इदन्न मम॥ ३॥ —ऋ० १।२५।१९

ओं तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः स्वाहा॥ इदं वरुणाय—इदन्न मम॥ ४॥ —ऋ० १।२४।११

ओं ये ते शतं वरुण ये सहस्रं यज्ञिया पाशा वितता महान्तः। तेभिर्नोऽअद्य सवितोत विष्णु-र्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा ॥ इदं वरुणाय सवित्रे विष्णवे विश्वेभ्यो देवेभ्यो मरुद्भ्यः स्वर्केभ्यः-इदन्न मम ॥ ५ ॥ —कात्या० श्रौत० २५।१।११

ओम् अयाश्चाग्नेऽस्यनभिशस्तिपाश्च सत्य-मित्त्वमया असि। अया नो यज्ञं वहास्यया नो धेहि भेषजꣳ स्वाहा ॥ इदमग्नये अयसे—इदन्न मम ॥ ६ ॥

—कात्यायनश्रौत० २५।१।११

ओम् उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम स्वाहा ॥ इदं वरुणायऽऽदित्यायाऽ-दितये च—इदन्न मम ॥ ७ ॥ —ऋ० १।२४।१५

ओं भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ। मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः स्वाहा ॥ इदं जातवेदोभ्याम्—इदन्न मम् ॥ ८ ॥ —यजुः० ५।३

पुनः निम्नलिखित मन्त्र से पूर्णाहुति करें, स्रुवा को घृत से भरके—

ओं सर्वं वै पूर्णꣳ स्वाहा ॥

इस मन्त्र से एक आहुति दें, ऐसे ही दूसरी और तीसरी आहुति दें।

पूर्णमासी की आहुतियाँ

ओम् अग्नये स्वाहा ॥१॥ मिष्ठान् से
ओम् अग्नीषोमाभ्याम् स्वाहा॥२॥ "
ओं विष्णवे स्वाहा ॥३॥ "

अमावास्या की आहुतियाँ

ओम् अग्नये स्वाहा ॥१॥ मिष्ठान् से
ओम् इन्द्राग्नीभ्यां स्वाहा ॥२॥ "
ओं विष्णवे स्वाहा ॥३॥ "

इन तीन–तीन मन्त्रों से मिष्ठान् की आहुति देने के पश्चात् पृष्ठ 37 पर लिखे व्याहृति आज्याहुति मन्त्रों से चार आहुति घृत से देवें।

(३) अथ पितृयज्ञः

अग्निहोत्र के पश्चात् पितृयज्ञ है। पितृयज्ञ अर्थात् जीते माता, पिता, आचार्य, गुरु, उपाध्याय आदि मान्यों की यथावत् सेवा करना पितृयज्ञ कहलाता है।

इति पितृयज्ञः

(४) अथ भूतयज्ञः (बलिवैश्वदेव)

निम्नलिखित दस मन्त्रों से घृत–मिश्रित भात की, यदि भात न बना हो तो क्षार और लवणांन्न को छोड़कर पाकशाला में जो कुछ भोजन बना हो, उसी की आहुति करें–

ओम् अग्नये स्वाहा॥ ओं सोमाय स्वाहा॥ ओम् अग्नीषोमाभ्यां स्वाहा॥ ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। ओं धन्वन्तरये स्वाहा॥ ओं कुह्वै स्वाहा॥ ओमनुमत्यै स्वाहा॥ ओं प्रजापतये स्वाहा॥ ओं सह द्यावापृथिवी-भ्याꣳ स्वाहा॥ ओं स्विष्टकृते स्वाहा॥

तत्पश्चात् निम्नलिखित मन्त्रों से बलिदान करें। एक पत्तल व थाली में यथोक्त दिशाओं में भाग रखना। यदि भाग रखने के समय कोई अतिथि आ जाय तो उसी को देना, अथवा अग्नि में डालना चाहिए—

भाग रखने के मन्त्र

ओं सानुगायेन्द्राय नमः॥ १ ॥ इससे पूर्व

ओं सानुगाय यमाय नमः॥ २ ॥ इससे दक्षिण

ओं सानुगाय वरुणाय नमः॥ ३ ॥ इससे पश्चिम

ओं सानुगाय सोमाय नमः॥ ४ ॥ इससे उत्तर

ओं मरुद्भ्यो नमः॥ ५ ॥ इससे द्वार

ओं अद्भ्यो नमः॥ ६ ॥ इससे जल

ओं वनस्पतिभ्यो नमः॥ ७ ॥ इससे मूसल व ऊखल

ओं श्रियै नमः॥ ८ ॥ इससे ईशान

ओं भद्रकाल्यै नमः॥ ९ ॥ इससे नैर्ऋत्य

ओं ब्रह्मपतये नमः॥ १० ॥

ओं वास्तुपतये नमः॥ ११ ॥ इनसे मध्य

ओं विश्वेभ्यो देवेभ्यो नमः॥ १२ ॥

ओं दिवाचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः॥ १३ ॥

ओं नक्तंचारिभ्यो भूतेभ्यो नमः॥ १४ ॥ इनसे ऊपर

ओं सर्वात्मभूतये नमः॥ १५ ॥ इससे पृष्ठ

ओं पितृभ्यः स्वधायिभ्यः स्वधा नमः॥ १६ ॥ इससे दक्षिण

—मनु० ३।८७-९१

तत्पश्चात् घृतसहित लवणान्न लेके—

शुनां च पतितानां च श्वपचां पापरोगिणाम्।
वायसानां कृमीणां च शनकैर्निर्वपेद् भुवि॥

—मनु० ३।९२

अर्थ—कुत्ता, पतित, चाण्डाल, पापरोगी, काक और कृमि—इन छह नामों से छह भाग पृथिवी पर धरे और वे भाग जिस-जिस नाम के हों उस-उस को देवे।

इति बलिवैश्वदेवविधिः

(५) अथ अतिथियज्ञः

तद्यस्यैवं विद्वान् व्रात्योऽतिथिर्गृहानागच्छेत्॥ १॥
स्वयमेनमभ्युदेत्य ब्रूयाद् व्रात्य क्वाऽवात्सीर्व्रात्योदकं व्रात्य तर्पयन्तु व्रात्य यथा ते प्रियं तथास्तु व्रात्य यथा ते वशस्तथास्तु व्रात्य यथा ते निकामस्तथाऽस्त्विति॥ २॥

—अथर्व० १५।११।१,२

जब पूर्ण विद्वान् परोपकारी सत्योपदेशक, गृहस्थों के घर आवें, तब गृहस्थ लोग स्वयं समीप जाकर उक्त विद्वानों को प्रणाम आदि करके उत्तम आसन पर बैठाकर पूछें कि कल के दिन कहाँ आपने निवास किया था? हे ब्रह्मन्! जलादि पदार्थ जो आपको अपेक्षित हों ग्रहण कीजिए, और हम लोगों को अपने सत्योपदेश से तृप्त कीजिए।

जो धार्मिक, परोपकारी, सत्योपदेशक, पक्षपातरहित, शान्त, सर्वहितकारक विद्वानों की अन्नादि से सेवा एवं उनसे प्रश्नोत्तर आदि करके विद्या प्राप्त करना अतिथियज्ञ कहाता है, उसको नित्यप्रति किया करें।

इन पाँच महायज्ञों को स्त्री-पुरुष प्रतिदिन करते रहें।

भोजन का मन्त्र

ओम् अन्नपतेऽन्नस्य नो देह्यनमीवस्य शुष्मिणः।
प्र प्र दातारं तारिष ऊर्जं नो धेहि द्विपदे चतुष्पदे॥

—यजुः० ११।८३

यज्ञोपवीतमन्त्रः

ओं यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥ १॥ —पार० गृह० २।२।११

यज्ञोपवीतमसि यज्ञस्य त्वा यज्ञोपवीतेनोपनह्यामि॥ २॥ —पार० गृह० २।२।११

महामृत्युञ्जयमन्त्र

ओ३म् त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥ ६०॥

—यजुर्वेद अ० ३

अर्थ—हे प्रभो! हम शुद्ध गन्धवाले, शरीर, आत्मा और सामाजिक बल को बढ़ानेवाले रुद्ररूप जगदीश्वर की निरन्तर स्तुति करें। आपकी कृपा से लता के बन्धन से छूटकर अमृततुल्य पके खरबूजे के तुल्य शरीर के बन्धन से छूटें, परन्तु मोक्षरूप सुख से कभी न छूटें॥ ६०॥

सत्सङ्ग भजन

राष्ट्रीय प्रार्थना (१)

ओम् आ ब्रह्मन् ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायताम् आ राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामेनिकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो नऽओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम् ॥ —यजु:० २२।२२

भजन—२

ब्रह्मन्! स्वराष्ट्र में हों द्विज ब्रह्म-तेजधारी।
क्षत्रिय महारथी हों अरिदल-विनाशकारी॥
होवें दुधारू गौएँ पशु अश्व आशुवाही।
आधार राष्ट्र की हों नारी सुभग सदा ही॥
बलवान् सभ्य योद्धा यजमान-पुत्र होवें।
इच्छानुसार वर्षें पर्जन्य ताप धोवें॥
फल-फूल से लदी हों औषध अमोघ सारी।
हो योगक्षेमकारी स्वाधीनता हमारी॥

भजन—३

पूजनीय प्रभो! हमारे भाव उज्ज्वल कीजिए।
छोड़ देवें छल-कपट को मानसिक बल दीजिए॥
वेद की बोलें ऋचाएँ सत्य को धारण करें।
हर्ष में हों मग्न सारे शोक-सागर से तरें॥
अश्वमेधादिक रचाएँ विश्व के उपकार को।
धर्म-मर्यादा चलाकर लाभ दें संसार को॥
नित्य श्रद्धा-भक्ति से यज्ञादि हम करते रहें।
रोग-पीड़ित विश्व के सन्ताप सब हरते रहें॥
भावना मिट जाए मन से पाप-अत्याचार की।
कामनाएँ पूर्ण होवें यज्ञ से नर-नारि की॥
लाभकारी हों हवन हर प्राणधारी के लिए।
वायु जल सर्वत्र हों शुभ गन्ध को धारण किये॥
स्वार्थ-भाव मिटे हमारा प्रेमपथ विस्तार हो।
'इदन्न मम' का सार्थक प्रत्येक में व्यवहार हो॥
हाथ जोड़ झुकाय मस्तक वन्दना हम कर रहे।
'नाथ' करुणारूप करुणा आपकी सबपर रहे॥

भजन—४

हे दयामय हम सबों को शुद्धताई दीजिए।
दूर करके हर बुराई को भलाई दीजिए॥ टेक॥
कीजिए ऐसा अनुग्रह हम पै हे परमात्मा!
हों सभासद् इस सभा के सबके सब धर्मात्मा॥ १ ॥
हो उजाला सबके मन में ज्ञान के प्रकाश से।
और अँधेरा दूर सारा हो अविद्या नाश से॥ २ ॥
खोटे कर्मों से बचें और तेरे गुण गावें सभी।
छूट जावें दुःख सारे, सुख सदा पावें सभी॥ ३ ॥

सारी विद्याओं को सीखें ज्ञान से भरपूर हों।
शुभ कर्म में होवें तत्पर दुष्ट गुण सब दूर हों॥ ४॥
यज्ञ-हवन से हो सुगन्धित अपना भारतवर्ष देश।
वायु-जल सुखदायी हों जाएँ मिट सारे क्लेश॥ ५॥
वेद के प्रचार में होवें सभी पुरुषार्थी।
होवे आपस में प्रीति और बनें परमार्थी॥ ६॥
लोभी कामी और क्रोधी कोई भी हम में न हो।
सर्व व्यसनों से बचें और छोड़ देवें मोह को॥ ७॥
अच्छी संगत में रहें और वेद-मारग पर चलें।
तेरे ही होवें उपासक और कुकर्मों से बचें॥ ८॥
कीजिए हम सबका हृदय शुद्ध अपने ज्ञान से।
मान भक्तों में बढ़ाओ अपने भक्ति-दान से॥ ९॥

भजन—५

आज मिल सब गीत गाओ, उस प्रभु के धन्यवाद।
जिसका यश नित गाते हैं, गन्धर्व मुनिजन धन्यवाद॥ १॥
मन्दिरों में कन्दरों में, पर्वतों के शिखर पर।
देते हैं लगातार सौ-सौ बार मुनिवर धन्यवाद॥ २॥
करते हैं जंगल में मंगल, पक्षिगण हर शाख पर।
पाते हैं आनन्द मिल, गाते हैं स्वरभर धन्यवाद॥ ३॥
कूप में तालाब में, सागर की गहरी धार में।
प्रेम-रस में तृप्त हो, करते हैं जलचर धन्यवाद॥ ४॥
शादियों में कीर्तनों में, यज्ञ और उत्सव के आदि।
मीठे स्वर से चाहिए, करें नारी-नर सब धन्यवाद॥ ५॥
गान कर 'अमींचन्द' भजनानन्द ईश्वर-स्तुति।
ध्यान धर सुनते हैं श्रोता, कान धर-धर धन्यवाद॥ ६॥

भजन—६

तुम्हारी कृपा से जो आनन्द पाया,
वाणी से जाए वह क्योंकर बताया।
नहीं है यह वह रस जिसे रसना चाखे,
नहीं रूप उसका कभी दृष्टि आया।
नहीं है वह गुण गन्ध जो घ्राण जाने,
त्वचा से न जाए छुआ व छुवाया।
संख्या में आना असम्भव है उसका,
दिशा-काल में भी रहे ना समाया।
आत्मोन्नति में तुम्हारी दया से,
मेरी जिन्दगी ने अजब पलटा खाया।
सत् चित् आनन्द अनन्तस्वरूप,
मुझे मेरे अनुभव ने निश्चय कराया।
गूँगे की रसना के सदृश 'अमींचन्द'
कैसे बताएँ कि क्या रस उड़ाया।

भजन—७

शरण प्रभु की आओ रे, यही समय है प्यारे।
आओ दर्शन पाओ रे, यही समय है प्यारे॥
उदय हुआ ओं नाम का भानु, आओ दर्शन पाओ रे॥
अमृत झरना झरता इससे, पीकर अमर हो जाओं रे॥
छल-कपट और झूठ को त्यागो, सत्य में चित्त लगाओ रे॥
प्रभु की भक्ति बिन नहीं मुक्ति, दृढ़ विश्वास जमाओ रे॥
कर लो प्रभु-नाम का सुमिरन, नहीं पीछे पछताओ रे॥
छोटे-बड़े सब मिल के खुशी से, गुण ईश्वर के गाओ रे॥

भजन—८

पितु मातु सहायक स्वामी सखा, तुम ही इक नाथ हमारे हो।
जिनके कछु और आधार नहीं, तिन के तुम ही रखवारे हो॥ १॥
सब भाँति सदा सुखदायक हो, दुःख दुर्गुण नाशनहारे हो।
प्रतिपाल करो सिगरे जग को, अतिशय करुणा उर धारे हो॥ २॥
भुलिहैं हम ही तुमको, तुम तो हमरी सुधि नाहि बिसारे हो।
उपकारन को कछु अन्त नहीं, छिन ही छिन जो विस्तारे हो॥ ३॥
महाराज महा महिमा तुम्हरी, समझें बिरले बुधिवारे हो।
शुभ शान्ति–निकेतन प्रेमनिधे, मन–मन्दिर के उजियारे हो॥ ४॥
यहि जीवन के तुम जीवन हो, इन प्राणन के तुम प्यारे हो।
तुम सों प्रभु पाय प्रतापहरि, केहि के अब और सहारे हो॥ ५॥

भजन—९

उठ जाग मुसाफिर भोर भई, अब रैन कहाँ जो सोवत है।
जो जागत है सो पावत है, जो सोवत है सो खोवत है॥
टुक नींद से अखियाँ खोल ज़रा, और अपने प्रभु से ध्यान लगा।
यह प्रीति करन की रीति नहीं, प्रभु जागत है तू सोवत है॥
जो कल करना है आज करले, जो आज करना है अब करले।
जब चिड़ियों ने चुग खेत लिया, फिर पछताये क्या होवत है॥
नादान भुगत करनी अपनी, ओ पापी पाप में चैन कहाँ।
जब पाप की गठरी सीस धरी, फिर सीस पकड़ क्यों रोवत है॥

वैदिक आरती

आरती-१०

ओं जय जगदीश पिता, प्रभु जय जगदीश पिता।
विश्व विरंच विधाता, जगत्राता, सविता॥ ओं॥
अनन्त अनादि अजन्मा, अविचल अविनाशी।
सत्य सनातन स्वामी, शंकर सुख-राशी॥ ओं॥
सेबक जन सुखदायक, जननायक तुम हो।
शुभ सुख शान्ति सुमंगल, वरदायक तुम हो॥ ओं॥
मैं सेवक शरणागत, तुम मेरे स्वामी।
हृदय पटल में प्रगटो, प्रभु अन्तर्यामी॥ ओं॥
काम, क्रोध, मद, मोह, कपट, छल, व्यापे नहीं मन में।
लगन लगे मम मन की, गुण तेरे वर्णन में॥ ओं॥
नित्य निरञ्जन निशदिन तेरो ही जाप करें।
तव प्रताप से स्वामी, तीनों ही ताप हरें॥ ओं॥
पतित-उद्धारण तारण, शरणागत तेरी।
भूले न भटके भ्रम में, निर्मल मति मेरी॥ ओं॥
शुद्ध बुद्धि से मन में, तेरो ही वरण करें।
सब विधि छल बल तज के तेरी शरण पड़ें॥ ओं॥

आरती—११

ओम् जय जगदीश हरे, स्वामी जय जगदीश हरे।
भक्त जनन के संकट क्षण में दूर करे। ओम्० ॥ १ ॥
जो ध्यावे फल पावे दुःख विनशे मन का।
सुख-सम्पत्ति घर आवे कष्ट मिटे तन का। ओम्० ॥ २ ॥

मात-पिता तुम मेरे शरण गहूँ किसकी।
तुम बिन और न दूजा आस करूँ जिसकी। ओम्० ॥ ३ ॥
तुम पूरण परमात्मा तुम अन्तर्यामी।
पारब्रह्म परमेश्वर तुम सबके स्वामी। ओम्० ॥ ४ ॥
तुम करुणा के सागर तुम पालनकर्त्ता।
मैं सेवक तुम स्वामी कृपा करो भर्ता। ओम्० ॥ ५ ॥
तुम हो एक अगोचर सबके प्राणपति।
किस विधि मिलूँ दयामय दो मुझको सुमति। ओम्० ॥ ६ ॥
दीनबन्धु दुःखहर्ता तुम रक्षक मेरे।
करुणा-हस्त बढ़ाओ शरण पड़ा तेरे। ओम्० ॥ ७ ॥
विषय-विकार मिटाओ पाप हरो देवा।
श्रद्धा-भक्ति बढ़ाओ सन्तन की सेवा। ओम्० ॥ ८ ॥

भजन—१२

ओम् अनेक बार बोल, प्रेम के प्रयोगी॥ टेक॥
है यही अनादि नाद, निर्विकल्प निर्विवाद,
भूलते न पूज्य पाद, वीतराग योगी॥ ओम्०
गा रहे प्रमाण मान, अर्थ योजना बखान,
गा रहे गुणी सुजान, साधु स्वर्ग-भोगी॥ ओम्०
ध्यान में धरें विरक्त, भाव से भजें सुभक्त,
त्यागते अधो अशक्त, पोच पाप-रोगी॥ ओम्०
शंकरादि नित्य नाम, जो जपे बिसार काम,
तो बने विवेक धाम, मुक्ति क्यों न होगी॥ ओम्०

भजन—१३

धन्य-धन्य तेरी कारीगरी करतार।

जब निराकार और निर्विकार साकार बना दिया जग कैसे।
जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तुर्या, रचा मुक्ति का मग कैसे॥
क्या वस्तु लई जिससे देह रची, फिर बना दई रग-रग कैसे।
सब धार रहा, रम सबमें रहा, फिर सब से रहा अलग कैसे॥
जब अपाणिपादो जवनो ग्रहीत फिर कोई पकड़ ले पग कैसे।
जब काशी काबे में पता नहीं, फिर पता बता लगता कैसे॥
बन पृथ्वी सूरज नभ तारे किस विदि रहा तू धार।
धन्य-धन्य तेरी कारीगरी करतार॥ १ ॥

कर दिये सूरज-से जो चमकते पदार्थ ऐसी चमक निराली कहीं नहीं।
बरसे तो भर दे जल जङ्गल आकाश में सागर कहीं नहीं।
नर-तन सा चोला सींव दिया, सुई-धागा हाथ में कहीं नहीं।
पत्ते-पत्ते की कतरन न्यारी, तेरे हाथ कतरनी कहीं नहीं॥
दे भोजन कीरी-कुञ्जर को, तेरे चढ़े भण्डारे कहीं नहीं।
वह यथायोग्य बर्ताव करे, मिरे 'रू औ' रियायत कहीं नहीं॥
दिन-रात न्याय में फर्क पड़े ना, तेरी लगी कचहरी कहीं नहीं।
अखण्ड ज्योति अपार लीला कहूँ न पायो तेरो पार॥
धन्य-धन्य तेरी कारीगरी करतार॥ २ ॥

जाने किस विधि गर्भ रखकर दे क्रीड़ा बालकपन की।
जाने जवानी आई कहाँ से, कमी रही ना यौवन की॥
फिर बुढ़ापा देकर दिखाया सबकी बनी सो एक दिन बिगड़न की।
कोई पैसे-पैसे को मुहताज है, कोई खोल रहे कोठी धन की॥
कोई पी सङ्ग कामिनी खेल करें, कोई रो-रो राख करे तन की।
कोई भटकते-भटकते उमर गँवा दें, कोई तृप्ति कर रहे मन की॥

वन पर्वत भूमि टीले पै टीले, कहीं-कहीं हरियाली वन की।
कहीं ताल समुन्दर जल से भरे, कहीं चोटी चमकतीं पर्वत की॥
कहीं शरद् वायु के झोंके चलें, कहीं अधिक धूप गर्मी धन की।
चातुर्मास घटा घिर आवें, बरस के बहा दें जलधार॥
धन्य-धन्य तेरी कारीगरी करतार॥ ३ ॥

जब चार वेद छः शास्त्र पुकारें, सारे गुणों का शुमार नहीं।
जब ऋषि-मुनि और सन्त महन्त थके, गा-गा पाया पार नहीं॥
जो करनी चाहे कर गुजरे, किसी काम में तू लाचार नहीं।
जो कर दे सो नहीं बदल सके, किसी और का लेता सहारा नहीं॥
कर भक्ति रङ्क गले लिपटे, बिन भक्ति भूप से प्यार नहीं।
यह बस्ती राम दरवाजे खड़ा, क्यों इसकी सुनते पुकार नहीं॥
सुख-स्वरूप दरस दे अपना खोल के अखण्डों-द्वार॥
धन्य-धन्य तेरी कारीगरी करतार॥ ४ ॥

भजन-१४

है जिसने सारे विश्व को धारण किया हुआ।
वह है हर एक वस्तु के अन्दर रमा हुआ॥
मिलता नहीं है इसलिए अज्ञानियों को वह।
अज्ञान का है बुद्धि पै परदा पड़ा हुआ॥
दुनिया के दुःख-रूप समुद्र से वह पार।
जगदीश से है प्रेम अति जिसका लगा हुआ॥
सच्ची खुशी से रहते हैं वे जन सदा अलग।
मन जिनका विषय-भोग में होवे फँसा हुआ॥
मन तो मलीन वैसा ही पूरण रहा तेरा।
गंगा में रोज जाके नहाया तो क्या हुआ॥

खोते हैं खेल-कूद में जो उमर रायगाँ।
अफसोस उनकी बुद्धि को न जाने क्या हुआ॥
अज्ञानियों से रहता है 'केवल' वह दूर-दूर।
खुल जावें ज्ञान-चक्षु तो वह है मिला हुआ॥

भजन-१५

तेरे दर को छोड़कर, किस दर जाऊँ मैं।
सुनता मेरी कौन है, किसे सुनाऊँ मैं॥
जब से याद भुलाई तेरी, लाखों कष्ट उठाये हैं।
क्या जानूँ इस जीवन अन्दर कितने पाप कमाये हैं॥
हूँ शर्मिन्दा आपसे, क्या बतलाऊँ मैं॥ तेरे०॥
मेरे पाप-कर्म ही तुझसे प्रीति न करने देते हैं।
कभी जो चाहूँ मिलूँ आपसे, रोक मुझे ये लेते हैं॥
कैसे स्वामी आपके दर्शन पाऊँ मैं॥ तेरे०॥
है तू नाथ! वरों का दाता, तुझसे सब वर पाते हैं।
ऋषि-मुनि और योगी सारे तेरे ही गुण गाते हैं॥
छींटा दे दो ज्ञान का, होश में आऊँ मैं॥ तेरे०॥
जो बीती सो बीती लेकिन बाकी उमर सँभालूँ मैं।
प्रेमपाश में बँधा आपके गीत प्रेम के गा लूँ मैं॥
जीवन प्यारे 'देश' का सफल बनाऊँ मैं॥ तेरे०॥

भजन-१६

अजब हैरान हूँ भगवन्! तुम्हें क्योंकर रिझाऊँ मैं।
कोई वस्तु नहीं ऐसी जिसे सेवा में लाऊँ मैं॥ अजब०॥
करें किस तौर आवाहन कि तुम मौजूद हो हर जा।
निरादर है बुलाने को अगर घण्टी बजाऊँ मैं॥ अजब०॥

तुम्हीं हो मूरती में भी, तुम्हीं व्यापक हो फूलों में।
भला भगवान् पर भगवान् को क्योंकर चढ़ाऊँ मैं॥ अजब०॥
लगाना भोग कुछ तुमको, यह एक अपमान करना है।
खिलाता है जो सब जग को, उसे क्योंकर खिलाऊँ मैं॥ अजब०॥
तुम्हारी ज्योति से रोशन हैं सूरज, चाँद और तारे।
महा अन्धेर है कैसे तुम्हें दीपक दिखाऊँ मैं॥ अजब०॥
भुजाएँ हैं न गर्दन है, न सीना है न पेशानी।
तुम हो निर्लेप, नारायण! कहाँ चन्दन लगाऊँ मैं॥ अजब०॥
बड़े नादान हैं वे जन जो घड़ते आपकी मूर्त।
बनाता है जो सब जग को उसे क्योंकर बनाऊँ मैं॥ अजब०॥

भजन-१७

अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में।
है जीत तुम्हारे हाथों में, और हार तुम्हारे हाथों में॥
मेरा निश्चय है एक यही, इक बार तुम्हें पा जाऊँ मैं।
अर्पण कर दूँ जगती-भर का, सब प्यार तुम्हारे हाथों में॥
या तो मैं जग से दूर रहूँ, और जग में रहूँ तो ऐसे रहूँ।
इस पार तुम्हारे हाथों में, उस पार तुम्हारे हाथों में॥
यदि मानुष ही मुझे जन्म मिले तो तब चरणों का पुजारी रहूँ।
मुझ पूजक की इक-इक रग का हो तार तुम्हारे हाथों में॥
जब-जब संसार का बन्दी बन दरबार तेरे में जाऊँ मैं।
तब-तब हो पापों का निर्णय सरकार तुम्हारे हाथों में॥
मुझमें तुझमें है भेद यही, मैं नर हूँ तू नारायण है।
मैं हूँ संसार के हाथों में, संसार तुम्हारे हाथों में॥

भजन-१८

सुखी बसे संसार सब, दुःखिया रहे न कोय।
यह अभिलाषा हम सबकी, भगवन् पूरी होय॥
विद्या, बुद्धि, तेज, बल सबके भीतर होय।
दूध-पूत धन-धान्य से वञ्चित रहे न कोय॥
आपकी भक्ति-प्रेम से, मन होवे भरपूर।
राग-द्वेष से चित्त मेरा, कोसों भागे दूर॥
मिले भरोसा नाम का, हमें सदा जगदीश।
आशा तेरे धाम की, बनी रहे मम ईश॥
हमें बचाओ पाप से, करके दया दयाल।
अपना भक्त बनायकर, हमको करो निहाल॥
दिल में दया उदारता, मन में प्रेम अपार।
धैर्य हृदय में वीरता, सबको दो करतार॥
नारायण तुम आप हो, पाप विमोचन हार।
क्षमा करो अपराध सब, कर दो जग से पार॥
हाथ जोड़ विनती करूँ, सुनिये कृपानिधान।
साधु-सङ्गत सुख दीजिये, दया नम्रता दान॥

□ □



ओ३म्

संगठन-सूक्त

ओ३म् सं समिद्युवसे वृषन्नग्ने विश्वान्यर्य आ।
इळस्पदे समिध्यसे स नो वसून्या भर।।१।।

हे प्रभो ! तुम शक्तिशाली हो बनाते सृष्टि को।
वेद सब गाते तुम्हें हैं कीजिए धन–वृष्टि को।।

सं गच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम्।
देवा भागं यथा पूर्वे संजनाना उपासते।।२।।

प्रेम से मिलकर चलो बोलो सभी ज्ञानी बनो।
पूर्वजों की भांति तुम कर्त्तव्य के मानी बनो ।।

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।३।।

हों विचार समान सबके चित्त मन सब एक हों।
ज्ञान देता हूँ बराबर भोग्य पा सब नेक हों।।

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।४।।

हों सभी के दिल तथा संकल्प अविरोधी सदा।
मन भरे हों प्रेम से जिस से बढ़े सुख–सम्पदा।।

ओ३म् द्यौः शान्तिरन्तरिक्षꣳ शान्तिः पृथिवी शान्तिरापः
शान्तिरोषधयः शान्तिः। वनस्पतयः शान्तिर्विश्वेदेवाः
शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः सर्वꣳ शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः
सा मा शान्तिरेधि।।
ओ३म् शान्तिः शान्तिः शान्तिः।।